अनुभूतियों की
प्रगीताञ्जलि
हृदयोद्गार
रचयिता
आचार्य विष्णुदत्त पाण्डेय ''मधुप''

अनुभूतियों की
प्रगीताञ्जलि
हृदयोद्‌गार
रचयिता
आचार्य विष्णुदत्त पाण्डेय ''मधुप''

रचयिता/प्रकाशक :

आचार्य विष्णुदत्त पाण्डेय

शारदा नगर, बी.आई.डी. लोहरदगा

झारखण्ड - 835302

मो. 9835976162

रूपसज्जा : एन. के. धीमान

मुद्रक : **हवाई प्रिंटर्स**

रादौर (यमुनानगर) हरियाणा ।

प्रथम संस्करण : 1000 प्रतियाँ

श्री बसन्त पञ्चमी 2 फरवरी सन् 2025, सम्वत् 2081

मूल्य : ₹ 150

आचार्य विष्णुदत्त पाण्डेय ''मधुप'' के द्वारा रचित ग्रंथ

1. गणिका सन्त सम्वाद
2. अनुभूतियों की प्रगीताञ्जलि भाग-1
3. अनुभूतियों की प्रगीताञ्जलि भाग-2
4. अनुभूतियों की प्रगीताञ्जलि भाग-3
5. अविश्वासी मित्र (उपन्यास)
6. हिन्दी साहित्य गद्याञ्जलि।

ग्रंथ प्राप्ति का स्थान

आचार्य विष्णुदत्त पांडेय ''मधुप''

शारदा नगर, लोहरदगा (झारखंड)

मो. : 9835976162

अनुक्रमाणिका

विषय **पृ.सं.**

विषय **पृ.सं.**

प्रस्तावना

जो कुछ सुन्दर और कल्याणमय है, उसके साथ यदि हम हृदय की समीपता बढ़ाते रहें तो संसार सत्य और पवित्रता की ओर अग्रसर होगा। मानव के अन्तरतम में कल्याण के देवता का निवास है। उसकी संवर्धना ही उत्तम पूजा है। जीवन के प्रत्येक पहलू को सुन्दर रूप में देखना और उसका यथा तथ्य प्रभावोत्पादक वर्णन करने की क्षमता को धारण करना ही कवि जीवन है। सच्चे कवि की यह विशेषता होती है कि वह अपने जीवन के द्वन्द्व को विश्व में जड़ जंगमव्यापी बना देता है। सुख में जग को हँसा देता है और दुःख में रुला देता है। मन पर हुए घाव जब असहनीय हो जाते हैं तब वे स्वतः लेखनी पर आ जाते हैं। यह मुक्तक काव्यांजलि आपके समक्ष प्रस्तुत है। इस रचना में समय-समय पर उठने वाले भाव तरंगों को काव्य कलेवर में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। मैंने अपने बचपन से ही मन में उठने वाले विचारों, भावों एवं प्रेरणाओं को समय-समय पर शब्दबद्ध किया है। उन्हीं का यह मुक्तक संकलन है।

इस रचना में आपको विभिन्न विचारों का समवेत दर्शन होगा। काव्यकला कैसे गतिशील होती है, यह भी आप इसमें अनुभव कर सकेंगे। परिस्थितिजन्य जीवन के तनावों एवं मन की अप्राप्य के लिए भटकन के दौर में देखे और भोगे हुए यथार्थ की अभिव्यक्ति ही रचना है। इस संकलन में आप इसका भी अनुभव करेंगे। समस्त मानवीय मनोवृत्तियों की जड़ अनुरागात्मिका वृत्ति है। स्नेह संसिक्त हृदय ही समग्र कोमल मानसिक वृत्तियों का आदर्श स्थिति पटल बन सकता है। इन्हीं भावों से जीवन को संशोधित करते हुए, ज्ञान में वृद्धि करते हुए, परस्पर एक दूसरे की सेवा सहायता करते हुए, सदा सर्वदा मीठी वाणी का उच्चारण करते हुए हम सब लोग मित्रतापूर्ण व्यवहार करें। सबके मन समान हों, प्रेम, करुणा, दया, सहानुभूति, आनन्द की दैवी स्थितियों से भरे रहे, यही शुभकामना प्रस्तुत करते हुए एवं प्रस्तुत रचना के आस्वादन का निवेदन करते हुए मैं अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

– विद्वच्चरणचञ्चरीक

आचार्य विष्णुदत्त पाण्डेय ''मधुप''

रचयिता परिचय

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक आचार्य श्री विष्णु दत्त पाण्डेय जी मेरे पिता जी हैं। आप प्रारम्भ से ही सरल एवं सरस स्वभाव के धनी हैं। आपका जन्म झारखण्ड प्रदेश के अन्तर्गत गुमला जिला के कुलकुपी ग्राम दिनांक 05 जनवरी 1970 को हुआ था। आपके पिता अर्थात मेरे पितामह डॉ विन्ध्येश्वर पाण्डेय (पं. विश्ववसेनाचार्य जी) संस्कृत जगत के एक प्रतिष्ठित विद्वान थे। मेरे पूज्य पितामह डॉ. विन्ध्येश्वर पाण्डेय जी की अनेकानेक लोकोपकारक रचनाएँ प्रकाशित हैं। लेखक की माताजी पूजनीया श्रीमती यज्ञसेनी देवी जी का सान्निध्य और आशीर्वाद वर्तमान में लेखक को प्राप्त है।

प्रारम्भिक शिक्षा– मेरे पिताजी की प्रारम्भिक शिक्षा उत्तरप्रदेश के हमीरपुर जिलान्तर्गत झलोखर ग्राम में हुई, वहीं रहते हुए उन्होंने बुन्देलखण्ड यूनिवर्सिटी झाँसी से अपनी स्नातक की शिक्षा प्राप्त की। इसके बाद वाराणसी जाकर वहाँ से हिन्दी एवं संस्कृत विषय में एम.ए. एवं बी.एड. की शिक्षा प्राप्त की। आपने बी. एच. यू. सम्पूर्णानन्द विश्वविद्यालय एवं काशी विद्यापीठ तीनों ही विश्वविद्यालयों से क्रमशः अपनी उच्च शिक्षा प्राप्त की। तदनन्तर 1996 से लेखक अपने गृहराज्य झारखण्ड के लोहरदगा जिलान्तर्गत शीला अग्रवाल सरस्वती विद्या मंदिर में हिन्दी एवं संस्कृत विषय के आचार्य के पद पर कार्यरत हैं।

संस्कृत शास्त्रों के संस्कार से ओतप्रोत अपने पिता के संसर्ग में बाल्यकाल से ही रहने के कारण मेरे पिताजी साहित्य की ओर अग्रसरित हुए। जिसके फलस्वरूप हिन्दी भाषा को माध्यम बनाकर उन्होंने संस्कृत के प्रभाव को प्रस्तुत करते हुए अपनी लेखनी चलाई। हिन्दी साहित्य के प्रति आपका झुकाव जन्मजात था। अतः बाल्यकाल से ही आपने हिन्दी साहित्य में रचना करना प्रारम्भ कर दिया था।

प्रतिभावान लेखक की प्रमुख रचनाएँ निम्नांकित हैं –

गणिका सन्त सम्वाद, अनुभूतियों की प्रगीताञ्जलि (तीन भागों में), अविश्वासी मित्र (उपन्यास), गद्याञ्जलि।

हिन्दी साहित्य में संस्कृतनिष्ठ रचनाओं को प्रस्तुत करना लेखक का मूल उद्देश्य रहा है। उन्होंने इसके लिए अपनी रचनाओं में यथासम्भव प्रयास किया है।

सुधीपाठकवर्ग प्रस्तुत रचनाओं का रसास्वादन करते हुए अपने अमूल्य सुझाव प्रस्तुत कर सकते हैं, आपके सुझावों का सदा स्वागत है।

अभिनव आनंद पाण्डेय
सिद्धान्तज्योतिषाचार्य (लब्धस्वर्णपदक)

भाग–1

।। सरस्वती वन्दना ।।

(1)

जो वीणा कर में लिए गगन में करती गमन हंस से।
अपने श्वेत शरीर में हिम सदृश धारण किये वस्त्र जो।।
शुक्ला नाम सरस्वती भगवती सब ओर से शुक्ल हैं।
वे मेरे मन में सदैव निवसें विद्या प्रदायी गिरा।। 1 ।।
कर पंकज में शोभित होती है वीणा छविमान।
सुभगशरीर में शोभा पाता श्वेताम्बर द्युतिमान।।
ऐसी तू हे देवि शारदे कर आ मेरे दिल में वास।
मेरे मन के अन्धकार को आकर कर दे क्षण में नाश।। 2 ।।
शीघ्र अविधा नाशकर, विद्या करहु प्रदान।
तुमसे है विनती यही, चहहुँ न वर अब आन।।

(2)

शारदे टारदे मेरे हर दुःख को, मेरे मन में जला दो दिया ज्ञान का।।
मैं डूबा हूँ अज्ञान की पंक में, ज्ञान की कांति हमसे निकट है नहीं।
ऐसी अनुकम्पा कर दे तू हे शारदे, मेरे मन से हटे रैन अज्ञान का।। 1 ।।
शारदे तेरे आधीन रहते हैं शिव विष्णु अज, तेरे आधीन रहते हैं अमरेन्द्र भी।
ज्ञान की ज्योति त्रिभुवन में फैलाने का। श्रेय है दूर करने को अज्ञान का।। 2 ।।
सृष्टि लय रक्षा करने की भी बुद्धि तू, देती है भव अजाच्युत को हे शारदे।
होता है ज्ञान वेदों का जब लुप्त तब, तू पिलाती सुरों को अमिय ज्ञान का।। 3 ।।
शारदे टारदे मेरे हर दुःख को, मेरे मन में जला दो दिया ज्ञान का।।

श्वेत श्वेत वस्त्र धारी, बायें कर वीणा धारी,
दायें हाथ ग्रन्थ धारी, हंस की सवारी है।
नाशिनि अविधा नाम, वासी अज पुर की हैं,
विद्या की स्वरूप वाली फूल माल धारे हैं।।1।।
थोड़े से सुजन के बुलाने से त्वरित आतीं,
आके जन मन के कलुष को हटाती हैं।
ऐसी देवी भारती, उतारूं तेरी आरती,
बुहारतीं सुजन दिल घर में रहती हैं।।2।।

।। राम प्रार्थना।।

रघुनाथ सनाथ करो हमको तुम नाथ अनाथ के जात कहे।
हमको सद्बुद्धि प्रदान करो, तुम बुद्धि के सागर जाते कहे।।
हमको तुम ओज प्रदान करो, तुम ओज के अंबुधि जाते कहे।
हमें साध्वस से तुम दूर करो, तुम साध्वस नाशक जाते कहे।।

।। राम विरह।।

मय तनया धव रिपु रघुवर जब, कानन गमन किये थे।
तब कोशल के नर नारी सब, दुःख पंक में डूबे थे।।
विरह अनल की तेज शिखा से, जल भुन वृक्ष रहे सब थे।
अखिल अवध के कण-कण सब, श्री राम-राम रटते थे।।

।। मित्र विरह।।

तर्ज– हमें वीर केशव मिले आप..................।।

हमें छोड़कर तुम गये राम जबसे। तेरी याद निशिदिन सताती मुझे है।।

आती है मुझको तेरी याद जब जब, हो जाता दिल मेरा चिन्ता से व्याकुल।

यथा मीन व्याकुल बिना जल के होती, जैसे पत्नी होती बिना पति के आकुल।।

मगर दिल को रोके हुए हूँ यहाँ पर, तेरी प्यार की बात डॅसती मुझे है।। 1।।

हमें छोड़कर तुम गये राम जब से, तेरी याद निशिदिन सताती मुझे है।

समझ में नहीं आती है मुझको ये बात, मेरा दिल तुझे चाहता क्यों है इतना।

न जाने है तुमने किया कौन जादू, जिससे मेरा मन तो व्याकुल है इतना।।

मगर क्या करुँ दूर हूँ राम तुमसे, विवश हूँ तेरी याद आती मुझे है।। 2।।

।। भगवान परशुराम प्रणाम।।

भृगुकुल पंकजवन दिनकर को मम अभिनंदन स्वीकृत हो।

तुम दुष्टों का दलन तथा पालन स्वजनों का करते हो।।

निज जननी का सिर खण्डित कर ताताज्ञा स्वीकार किया।

सहस भुजा वाले दानव का पल भर में संहार किया।।

भव भक्तों में भृगुकुल दीपक नाम तुम्हारा पहले है।

निज भक्ति और श्रद्धावश ही अजगव शंकर से पाया है।।

तुमसे दूर सदा रहते हैं कोध्र लोभ अरु मोह काम।

पौरुषधारी भक्तियुक्त हे परशुराम तुमको प्रणाम।।

देह सुभोभित है सुभस्म से सुन्दर अति ही लगता।

तप से सकल शरीर वज्र सम जटिल गठित है लगता।।

परसुहाथ में लेने से हो गया नाम है परशुराम।

जमदग्नि पुत्र को स्वीकृत हो शतबार हमारा शुभ प्रणाम।।

।। प्रकृति के परिवर्तन।।

प्रकृति की मधुर मधुर मुस्कान, जगा देती सोये को विहान।
अरुण की किरणें पहुँच कमलों में, खिला देते हैं सुमन अम्लान।।1।।
जैसे ही प्रभाकर चढ़ता है, अम्बर में ज्योति बिखरती है।
अम्बर से पृथ्वी पर आती, धरणी तब ज्योतित होती है।।2।।
मध्य गगन में अरुण पहुँचकर, ज्यों ही स्वतेज बिखराता है।
तप-तप करके पृथ्वी तपती, चलने वाला जल जाता है।।3।।
जैसे ही दिवाकर ढलता है, किरणें उसकी है सिमट जातीं।
लक्षित होता है शशि नभ में, निशाकाल है कहलाती।।4।।
जिस रजनी में चन्द्र चमकता, वही रात्रि होती है रजनी।
किन्तु चाँदनी रात में सबको, सुखानुभूति होती नाहिं सजनी।।5।।
चकवा चकवी विरह वेदना, से रजनी में दुख पाते।
अलग-अलग ही रहना पड़ता, ऐसे ही हैं रात्रि बिताते।।6।।
सोचो किन्तु तुम्हीं सजनी, वे होंगी कितना सुख पातीं।
जिनको होता है प्रिय से मिलन, धन्य मानती होंगी कितनी।।7।।
जिसका पति किन्तु अलग होगा, विरह वेदना खटकेगी।
उसको जब-जब याद आयगी, सिसक-सिसक रह जायेगी।।8।।

।। मात्रा-हरण।।

मदन कदन मन अयन बसत पर, परम नरम जन प्रबल करम कर।
नयन जलज कर जलज वदन धर, अलक भ्रमर वर कमल करज धर।।
खगप चलत नभ चरण कमल धर, मदन दहन कर परम प्रबल वर।
नमत सतत नर हरन कटक अध, परत गहन भव असन कहत नर।।

।। उद्‌बोधन।।

रे नर अब तो तू जा चेत।
राम सुबीज किसान बुद्धि निज उर को बना तू खेत।।
तज दुर्जन का संग सुजन बन मन को लगा तू हरि में,
सज्जन का जब संग करेगा नाम करेगा जग में।।1।।
निज प्रण का कर ध्यान जरा सा हरि सम्मुख क्या बोला।
कभी न तुमको जाके जग में भूलेंगे नंदलाला।।2।।
अब क्यों दुनियाँ में आ करके टलते हो निज प्रण से।
सत्य अहिंसा शील दया तज करते संग छ रिपु से।।3।।
अब तो चेतो समय गँवाया बहुत राम को भज लो।
नर तन का उद्‌देश्य जगत में आकर पूरा कर लो।।4।।
कमलाक्ष दिवाकर कोटि प्रकाश चतुर्भज धारी अघारी तथा।
शत कोटि मनोज ललाम सरोज हजार गुलाब सुकोमलता।।
निज भक्त सुमानस हंस निशाकर सज्जन चातक पंक्ति तथा।
पवि पाहन मोह महीघर का तजि चिन्तन मोह करे सुवृथा।।5।।
नर देह सुगेह समान दियो फिर भी सकुचै हरि चिंतन में।
रसना भजना हरि को तजके भजती भव भेक रमे दुख में।।
अब तो भव बंधन त्याग सुशीघ्र रमो हरि में जलजाम्बक में।
तज मोह कलत्र गृहादिक का घर दे शिव को निज मानस में।।6।।

(2)

जिसने तुझे बनाया, उस ईश को न भूलो।
भज लो जगत में आके निज कर्म को न भूलो।।
नर देह जैसा सुन्दर, तुझको मिला है मन्दिर।
नव द्वार हैं तुम्हारे इस तन में हे मनुजवर।।

नव की है गिनती पूरी, अब पूर्ण को न भूलो।।1।। जिसने.......

तुमको दिया है उसने, रसना नयन चरण कर।

अरु कान, नासिका भी हरि ने दिया है अति बर।।

रसना से नाम हरि का जीवन में कुछ तो जपलो।।2।। जिसने......

ये देह एक दिन तो निश्चय ही छोड़ना है।

फिर कर्म के मुताबिक परदेह धारना है।।

इस हेतु जग में रहकर कुछ तो सुकर्म करलो।। जिसने.......

।। रावण–हनुमान–युद्ध।।

रघुवीर के सेवक वीर समीर कुमार चले रण में जब हैं।

दशकंधर किंकर वीर तमीचर के तब धीर न धीर रहे हैं।।

केहरि कंधर का धर ध्यान भिड़े हनुमान न नेकु डरे हैं।

उस ओर समूह क्षपाचर के सजि शस्त्र अनेक न स्वल्प रुके हैं।।

।। राधा का अनन्य प्रेम।।

एक ग्वालिन गाँव गोकुल की गली में एक अवसर।

पर खड़ी थी निज सखी के अंस पर निज हाथ रखकर।।

वृषभानुजा का कृष्ण के प्रति प्रेम की उत्कृष्टता।

को रही बतला स्व सखि से थी बड़े ही शान्त स्वर में।।1।।

जब कृष्ण तजकर गोपियों को कर गये मथुरा गमन थे।

उस समय के बाद वन के सूखने सब तरु लगे थे।।

तब राधिका श्री कृष्ण के विरहाग्नि से तपने लगी।

सह दुःख अपनी प्रिय सखी से बात यों कहने लगी।।2।।

वन कुंज में मैं एक अवसर पर खड़ी थी सह सखी के।

बह रही थी मंद मारुत केतकी का गंध लेके।।

कुछ-2 प्रकंपित शीतलहरी शीत करती थी वदन को।
और गिरिधर का विरह विचलित किये था मम हृदय को।।3।।
कुछ देर के उपरान्त मैंने यों कहा अपनी सखी से।
अन्यत्र अब हम तुम चलें इस नित्य सुंदर कुंज वन से।।
मैं निज सखी के साथ पथ पर शीघ्रता से जा रही थी।
दोनों के मन सरितेश में अति लोल लहरें उठ रही थीं।।4।।
मैंने कहा हे प्रिय सखी अब प्रभु विरह हटता नहीं।
मन से कि जब तक श्यामघन प्रत्यागमन करते नहीं।।
इस हेतु कुछ क्षण सुखद एवं शांति की बातें करें।
फिर और अपने दुःख को कुछ अंश तक हम कम करें।।5।।
इसके प्रथम मैं एक अवसर की कथा बतला रही हूँ।
उसको सुनो तुम ध्यान देकर जो वचन मैं कह रही हूँ।।
जो कुछ मनोरंजक तुम्हे कुछ पूर्व सुनने में लगेगी।
पर वास्तविकता बाद में मन व्योम में छा जायेगी।।6।।
मैं खड़ी थी हाथ रखकर निज सखी के अंस पर।
वन में उसी शुभकाल में ही आ गये वर धरणि धर-धर।।
मैं सखी के साथ प्रेमालाप में अति मग्न थी।
शाटिका कुछ गिर गई इस हेतु आधा नग्न थी।।7।।
कुछ ही समय के बाद मैं निज बात को सम्पूर्ण करके।
ज्यों निहारी शान्त मन से निज विरह धृत मुख उठा के।।
निज सामने अवलोक कर श्री कृष्ण को घनश्याम से।
अति ही सशंकित हो गयी पंचानन धृत नाग से।।8।।
मैंने स्वआनन को ढका अपनी गिरी उस शटिका से।
और ढककर सोचने फिर लग गई निज शुद्ध मन से।।

क्या उचित है एक नर को मध्य नारी जा पहुँचना।
या फिर किसी नारी को ऐसे शान्त ही वन में टहलना।।9।।
कुछ काल के उपरान्त मैंने शाटिका को ज्यों हटाया।
निज सखी को पास में मैंने नहीं उस काल पाया।।
मैंने भरे दुख निज हृदय से ईश की अभ्यर्थना की।
और निज लज्जा के कारण निज सुआनन को गिरा ली।।10।।
जब भग गई सखि दूर हमसे मैं अकेली रह गई।
अवनत किये निज अंस को फिर मैं खड़ी ही रह गई।।
जिस भाँति ओला वृष्टि से सब धान्य होता नष्ट है।
एवं कुलिश के पात से होता कुधर ज्यों भ्रष्ट है।।11।।
उस भाँति मेरा सिर झुका तो फिर झुका ही रह गया।
वाणी रुकी ही रह गई सन्ध्या समय फिर हो गया।।
कुछ ही समय के बाद माधव ने लगाया हाथ हम पर।
वपु हमारा कंप गया ज्यों छू गई बिजली वदन पर।।12।।
वातावरण को भंग करके श्याम बोले मन्द स्वर में।
डर गई क्या तुम सखी इस निर्मनुज कान्तार में।।
क्यों छोड़कर के भग गये थे तुम बताओ श्याम मुझसे।
मैं बोल पाई सिर्फ इतना चू पड़े आँसू नयन से।।13।।
फिर कृष्ण बोले शान्ति से मथुरा गया था मैं सखी।
पर आ गया हूँ पास तेरे हो रहीं हो क्यों दुखी।।
मैं कर रही थी बात पति से ग्लानि मन में हो रही थी।
रात्रि होती जा रही थी कांति विधु की बढ़ रही थी।।14।।
बोले कृष्ण चलो सखी क्योंकि हो रही रात।
चार बजे कल शाम को पुनः करेंगे बात।।15।।

मंद-2 डगमग में धरते श्याम चले जाते थे।
पीछे आती राधा को बहुबार निरखते जाते थे।।
क्षपा सुन्दरी रजत शाटिका पहने थिरक रही थी।
मानो पति को पास जान उत्फुल्ल दिखाई पड़ती थी।। 16।।
प्रकृति छटा को देखकर, बोले श्री घनश्याम।
रजनी जाती बीतती, शीघ्र चलें अब धाम।। 17।।
कल केलि करती साथ प्रभु के पास जा निज धाम के।
मैं विलग फिर हो गई निज घर गये लघु बन्धु बल के।।
जब मैं गई निज धाम में फिर नींद भी निज धर गई।
आंसे खुलीं मेरी तथा शोकाश्रु पूरित हो गई।। 18।।
कुछ देर तक उस स्वप्न को विधि ने नहीं रहने दिया।
तुम ही बताओ पर सखी भव जीव कर सकता है क्या।।
मेरी कथा अब हो गई अब तुम सुनाओ कुछ सखी।
सखि भी हमारी बात पर अति तीव्र ध्वनि से थी हँसी।। 19।।
सखि ने कहा मुझसे चलो कुछ देर प्रभु गुण गान कर लें।
और अपने प्रभु विरह को अंश कुछ तक मंद कर लें।।
भगवान भास्कर कुछ समय में डूबने ही जा रहे हैं।
शीघ्र अब हम तुम करें अति देर पहले घर तजे हैं।। 20।।
फिर कृष्ण नामावलि प्रथम मेरी सखी कहने लगी।
तरू पंक्तियाँ वन की सहज ही शांत हो सुनने लगीं।।
श्री कृष्ण माधव श्याम अच्युत नंदबालक मधुमथन।
गोपाल लोकेश्वर कुधर धर कंस रिपु पंकज नयन।। 21।।
चितचोर दामोदर महारसिया अधोक्षज रुक्मिणी धव।
भूमि धरधर कुधर यदुकुल नाथ पंकज अक्षश्री धव।।
धर्मांशु की किरणें गई धमांशु के ही साथ में।

फिर हो गया संध्या समय का कुछ समय के बाद में।। 22।।
मैं सखी के साथ अपने सदन पथ जाने लगी।
प्रेमाकुला होकर डगर में श्याम हे कहने लगी।।
फिर गाँव में जाकर सदन में मैं गई अति शांति से।
मेरी सखी भी निज सदन में फिर गई अति शांति से।। 23।।
अनन्य प्रेम राधिका का बुद्धिपाथ नाथ से।
कह नहीं सकें सुधी खगेश विधि महेश से।।
हम मनुष्य नारि को ये कह गई स्वप्रेम से।
राधिका तजो न प्रेम संकटों में कृष्ण से।। 24।।

।। बन्ध–निरुपण।।

अज्ञान बीज है भव तरु का देहाभिमान अंकुर है।
कोमल किसलय राग तथा है कर्म सुशीतल जल है।।
देह तना है विषय पुण्य हैं एवं गो उपशाखायें।
बहु विधि कर्मों से सम्भव दुःख ही इस तरु का फल है।।
मर्त्य जीव रूपी पक्षी ही इस फल का भोक्ता है।
जो जग में रहकर के नाना दुःख भोग करता है।।
इस दुःख फल को खाने से अच्छा है भगवत भजन करो।
और भवाम्बुधि को गोपद के सदृश शीघ्र ही पार करो।।

।। सुन्दरता वर्णन।।

अति मेचक कोमल केश से वेष्टित है शुभ आनन पंकज सा।
कल कोमल गाल गुलाब समान सुचिक्कन गर्भ सरोरुह सा।।
अति मन्द डगों से जभी मग में चलती मदमत्त सुसिन्धुरसा।
धसती उसके कलधौत समान शरीर की सुन्दरता से रसा।।
अपने करों में जब ले करके पोथी वृन्द, जाती है बिद्यालय की बहुत धीरे चाल से।

नवल कुमार वहु उसकी तरफ तब, अपने अम्वकों को लगाते अति प्यार से।।
उसके शरीर के सुगन्ध को लेकर जब, बहता है मारुत बहुत मन्द चाल से।
जान जाते तब सब संसय न इसमें है, निकली जरूर होगी सुम इस पथ से।।

।। भारत– वन्दन।।

जिस पुण्य भूमि में ईश्वर का अवतार अनेको बार हुआ।
हरि के हाथों से दुष्टों का संहार अनेकों बार हुआ।।
जिस पावन धरती पर बहती गंगा यमुना धारा।
उस भरत भूमि को नतमस्तक हो शत–2 बार हमारा।।
जिस भारत के हैं वासी सब सत्य अहिंसा व्रतधारी।
जहाँ वासना नारि नरों से रही हारती बेचारी।।
जिस सुभूमि में जन्म हेतु देवता सदा ही ललचाते।
उस पवित्र धरती को हम हैं शत–2 शीष झुकाते।।
जहाँ वेद द्रष्टा ऋषियों ने हरि प्रेरित हो जन्म लिया।
और अनेकों ग्रन्थों का मानव हितार्थ निर्माण किया।।
श्रुति द्रष्टा श्री कृष्ण जहाँ हो किया महाभारत निर्माण।
और अनेकों ऋषियों ने भी किया नरों का है कल्याण।।
संसार सरोवर कंज भरत भू सब देशों से न्यारा है।
इसीलिए तो हरि को भी यह नाक लोक से प्यारा है।।
अतः विष्णु ने भारत में निज लोक छोड़ अवतार लिया।
और स्वभक्तों को अति दुस्तर भव वन निधि से पार किया।।
इस भारत माता ने ही है हरि भक्तों को जन्म दिया।
जिनके जीवन पुस्तक से दुनियाँ ने शिक्षा ग्रहण किया।।
ऐसे भारत का आओ हम सब मिल गुणगण गायें।
संसार शिरोमणि इस भारत को आओ शीष झुकायें।।

।। हरि–पंचक ।।

अहिपतिशायी चक्री खगपतिगामी नलिननयनधारी।
गदकरिहरि विद्याहरिकानन जनमन अधीसकलहारी।।
दुखपुंज अनल सुखपुंज धान्यधन कनककशिपुवधकारी।
जनमनमीननीर अघहारी नमन करूँ मैं सुखकारी।।1।।
अम्बक अम्बुज अलकपुंज तनु मेचक अहिसमशुभधारी।
वदन मदन शतकोटि सुछविहर हरमन पंकज मधुहारी।।
स्वभू तत्वज्ञाता ज्ञानीप्रिय ज्ञानगम्य तन घन दुतिहारी।
जनमनमीननीर अघहारी नमन करूँ मैं सुखकारी।।2।।
कमलापति त्रिभुवनपति दुर्गम भव जलनिधि निस्तारण।
आदि पुरुष दुर्गम्य चतुर्भुजधारी त्रिभुवन कारण।।
कुन्दकुसुमरद पीतवस्त्रधर द्विजपद वक्षस्थलधारी।
जनमनमीननीर अघहारी नमन करूँ मैं सुखकारी।।3।।
क्षीराम्बुधिवासी सुपद्मधर भक्त कोक मृगलांछन।
मोह महीधर कुलिश गदाधर कम्बुग्रीव चन्द्रानन।।
अम्बुज गर्भ चरण चरणज अरविंद पंखुडी दुतिहारी।
जनमनमीननीर अघहारी नमन करूँ मैं सुखकारी।।4।।
निजजनमन मानसमराल अरु भक्त कमल निशिनाशी।
भव संभव कर्ता हर्ता समदर्शी घट-घटवासी।।
जगरक्षक मुनि कुमुदकलाधर देवद्विजहितकारी।
जनमनमीननीर अघहारी नमन करूँ मैं सुखकारी।।5।।

।। सवैया ।।

मारुत वेग से कानन के सब शाखी सदा हिलते रहते।
मनमोहन माधव राधिका संग सदा वन में फिरते रहते।।
उनके कर में मुनि मानस मोहन वंशी सदा अति शोभित होती।
ऐसे मनोहर कानन में सखि भागि चलैं यह भावना होती।।
सिर में कबरी अति शोभित है अरु भाल में शोभित चंदन है।
कर में अति कोमल नीरज है वपु में पटपीत सुशोभित है।।
सुमनोहर गात की सुन्दरता शतकोटि मनोज से ऊपर है।
उस श्याम के देह की कोमलता शतकोटि सरोज से बाहर है।।

।। तुलसी और मानस ।।

जिस भाँति हार में प्रथम पुष्प अपनी सी शोभा पाता है।
तथा मनोहर चक्र मध्य चूड़ामणि शोभा पाता है।।
जिस भाँति खगों में कोयल अपनी अलग महत्ता रखती है।
कुहू-2 कर जन मन को ऋतु स्वामी में सुख देती हैं।। 1 ।।
हुलसी सुत श्री तुलसी जग में निज जगह प्रथम सुम सी रखते।
चूड़ामणि सम श्रीरामचरित हम हिन्दी काव्यों में लखते।।
जिस रामचरितमानस में तुलसी ने किया राम का गुण गणगान।
उस सुग्रन्थ का इस जग का हर मानव क्यों न करे सम्मान।। 2 ।।
कवि वृन्द सरोरुह कानन अर्क सदा तुलसी तुलसीसम हैं।
उनके अति सुन्दर मानस का अधिवास सदा जनमानस है।।
अपने हर ग्रन्थ में श्रीतुलसी ने बखान किया जलजाम्बक का।
इस हेतु सहादर नाम सदा जग लेता है भक्तप्रवर तुलसी का।। 3 ।।

।। चाँदनी रात का वर्णन।।

यह रात्रि निशाकर के कर संघति से अभिस्नात सुशोभित है।
बस नीरवता गुण से जग सर्व बंधा सम मानव लक्षित है।।
सरसीरुह कानन आनन सम्प्रति मानों त्रपा से निलम्बित है।
वनशष्प तुषार सुशीतल स्नान तथा पवमान विकम्पित है।। 1 ।।
सर में रजनीकर का प्रतिबिम्ब निसर्ग सुआनन के सम है।
लगता यह मानों निसर्ग निजानन दर्पण में शुभ देख रहा।।
अति मन्द समीर कभी सर के जल को कुछ कम्पित सा करता।
निज केश विलोकन हेतु निसर्ग स्वदर्पण कम्पित सा करता।। 2 ।।
प्रकृति स्वशरीर निशाकर कान्ति विनिर्मित अम्बर शुक्ल ढके।
इठलाकर सुन्दरता अपने पर नाच रही खुश हो करके।।
नभ में कुछ तारक वृन्द खिले शुभ भूषण मानों बने उसके।
अति नृत्य के कारण ओस के ब्याज से देह से स्वेदकनी ढरके।। 3 ।।
जग में सबको पर आनन्द से सुख का अनुभाव न होता नहीं।
कोई सुखी होता तथा फिरता दुख से नर कोई कहीं।।
चकवा चकवी मृगलांछन हास से दुःख से पूर्ण हुए अति ही।
कुमुदाम्बुज कानन और प्रफुल्लित हो मुद प्राप्त हुए अति ही।। 4 ।।

।। वसन्त–वर्णन।।

यह वसन्त का सुन्दर काल, फैलाये छवि जाल।।
कर रही माता प्रकृति स्वयं, निज बच्चों का शुभ श्रृंगार।
सहकार बाल को नियति जननि ने, पहनाया मंजरिका माल।। 1 ।। यह वसन्त...
चाहती बनाना राजपुत्र सम, निज बच्चों को अतः श्रमित हो–
जुटा रहीं श्रृंगार वस्तुएँ, यद्यपि गई थकित हो।

बालों हित हो चूर्ण सुगन्धित, चलती पवन लहरिका माल।।2।।
यह वसन्त...अब बारी है पीपल सुत की, स्नात प्रतीक्षा में वह है,
सज्जित कर दूंगी तुमको भी, कहा जननि ने अब है।
सुन वह सुखी हुआ अति ही, देर हो रही है यह दुख था–
उसको पीले पत्तों के मिस, खुशी हुई अपना दुख ढाल।।3।। यह वसन्त...
जा निकट अधिक बालक के माता, ने सोचा क्या पहनाऊँ,
जिससे शोभित हो सुत मेरा, तथा देख में सुख पाऊँ।
कर बिचार अति मसृण हरित, कंचुक पहनाया तत्काल।।4।। यह वसन्त...
पहना वसन उचित बालों को, चली सजाने बालाओं को,
कर स्नान चुपचाप लतायें, देख रही हैं माता को।
पुष्प सुसज्जित उनको करके, हरा मसृण ओढाया साल।।5।। यह वसन्त...
पुत्रों को बालाओं को निज, वस्त्राभूषण से सज्जित कर,
स्वयं खुशी से झूम उठी वह, रोक न पाई प्रसन्नता को।
माता का बच्चों ने खुश हो, स्वागत किया बहुत इस काल।।6।। यह वसन्त...
आम्रवृक्ष पर कोयल कूकू, करके कुक रही है,
जैसे करता हो अभिनन्दन, आम्र वही ध्वनि गूँज रही है।
विहग ध्वनि मिस वृक्षों ने, जननि को पहनाया स्तुति माल।।7।। यह वसन्त...

।। मोक्षोपाय।।

मन पंचायुध धर चिन्तन कर। भव सागर से फिर सत्वर तर।।
क्रोध लोभ ममता मद मत्सर। निज से कर परिहार असमसर।।1।।
वासस्थान निरन्तर हर उर। जिनका उनका सेवक बन फुर।।
रजनीचर सरसीरुह शशिकर। निज जन मानस हंस निरन्तर।।2।।
कैवल्यद सुररक्षण तत्पर। शरणागत जन मीन महासर।।
लक्ष्मी रमणाच्युत विश्वेश्वर। छवि सरितेश कृष्ण परमेश्वर।।3।।

ऐसे राघव का पद उत्पल। अब बन भ्रमर विरहित सकल मल।।
अभिलाषा यदि भव तरने की। निज को बहुत विमल करने की।।4।।
उपर्युक्त को तो धारण कर। सज्जन का अनुसरण और कर।।
इससे तू भव तर जायेगा। तुझे मोक्ष पद मिल जायेगा।।5।।

।। तुलसी–महिमा।।

राघव का सेवक था अनन्य पर महा विश्व उपकारी था।
शायद उसको मनुजों के हित का ध्यान सदा अति भारी था।।
मानस सासंसृति के हितार्थ सोपान मोक्ष का बना गया।
कागज के पत्रों को तुलसी तुलसीदल जैसा बना गया।।
वेदार्थतत्व रंग से हिन्दी भाषा के पट को सजा गया।
वाणी की रानी की वीणा से रामभक्ति स्वर बजा गया।।
छोटे छन्दों के स्वर्णों से क्या राममूर्ति ही बना गया।
कागज के पत्रों को तुलसी तुलसीदल जैसा बना गया।।

।। हरि नामावली।।

तर्ज– ये गोटेदार लहँगा......
टेक– हरि, करुणासिन्धु, माधव, अच्युत, अखिलेश्वर।
कमलापति, कृष्ण, केशव, रघुवर, परमेश्वर।।
अन्तरा– अम्बुज दृग, परमात्मा, पावन, मायारहित, महेश्वर,
राघव, प्रभु, जगदीश्वर।
राम विश्व विश्वात्मा, माधव, दामोदर, विश्वेश्वर, मायापति, अमरेश्वर, ईश्वर, कलानाथआस्य, श्रीधर, गोपति, देवेश्वर।।1।। हरि....
पुरुषोत्तम, पूतात्मा, धन्वी, सम्भव, भावन, धाता, शाश्वत, शम्भु, विधाता।
ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, मेधावी, प्राणद, चतुरात्मा, शिव, नेता, वृषकर्मा, यम, नेता, जेता, विनय, नन्द, सोम,

दुर्धर, वाग्मी, अ, पुरन्दर।।2।।हरि.....

इन पंचायुध के नामों को, पढ़ता है जो मन से, पूजन करता तन से।

विजय प्राप्त होती है उसको सदा महासंकट से, सदा जीतता गो से, मन से, अतः राम विष्णु भज ले जग के नर पामर।।3।।हरि....

।। प्रेमोपालम्भ।।

(1)

तर्ज– दिल के अरमां......

टेक- दिल के अरमा दिल में ही बस रह गये। तुम मुहब्बत कर जुदा अब हो गये।।

अन्तरा- खाई थीं कसमें न कितनी आपने। वे कसम सब व्यर्थ ही अब हो गये।। 1।। दिल.....

छोड़ दो चाहे भले ही तुम मुझे। पर मेरे दिल में तो तुम अब बस गये।।2।।दिल....

दुःख है मुझको यही बस एक ही। फर्ज मेरे सब अधूरे रह गये है।।3।।दिल..

अर्ज है अन्तिम हमारी एक ही। भूलना मत फर्ज पूरे हो गये।।4।।दिल.....

।। प्रेमोपालम्भ।।

(2)

तर्ज- कौन दिशा में ले के चला........

टेक- आज बतादो मुझे मिलोगे कहाँ तुम, ये मेरा हृदय,

है बहुत ही सदय, जरा रुकना तो- 2।

दिल बिचलाये बात जाने की तुम्हारे, कहीं गये जो उधर, हम जायेंगे गुजर,

रुक जाओ तो- जाओ तो।।

अन्तरा- ओ साथी तेरे साथ से पहले, क्या वादे थे बोल तो,

कहते थे तुम खोल हृदय को देखो मेरे पूर्व तो।

साफ न हो तो तुम फिर मुझको छोड़ो भले ही तो,
अब सब वादे तेरे निकले अधूरे।। 1।। आज बतादो....
मेरे तो मन बगिया के तुम फूल प्रथम हो यार,
हो क्या बतलाऊँ चाह रहा मैं केवल तेरा प्यार।
फूल बना लो तुम अब मुझको तुच्छ हृदय वन के,
इतना ही मुझे अब कहना तुझे है।। 2।। आज बतादो....
क्या जानो जाने पर तेरे मेरे दिन कटते किस भाँति,
रहता हूँ मै तेरे बिना तो इस घर में किस भाँति।
रोता ही मैं दिन भर रहता मनि बिन फनि जिस भांति,
इसलिए तुमसे मैं कहता न जाओ।। 3।। आज बतादो....

।। प्रेमापालम्भ।।

(3)

तर्ज- ये माना मेरी जाँ..
टेक- माना कि दिल ये तुम्हारा विमल है।
वचन में विलगता मगर किस लिए है।।
अंतरा- बात तुम बताओ साफ-2 प्यारे। लग क्यों रहे हो अब तुम न्यारे।।
माना कि दुख से हृदय व्याकुलित है, कारण बताना कठिन किस लिए है।। 1।।
माना है तुमने अगर मुझको कुछ भी, तो फिर छिपाओ नहीं बात कुछ भी।
अगर एक दिल औ वदन सिर्फ दो हैं, अलगाव तो फिर यही किस लिए है।। 2।
अन्तिम यही मैं तुम्हें कह रहा हूँ, सुनो ध्यान देकर, जिसे कह रहा हूँ।
मुझे भूलना मत कभी जिन्दगी में, यही अर्ज अन्तिम, तुम्हारे लिए है।। 3।।

।। लोक गीत ।।

चलो हारे खैं नहि कै दुइ बैल, किसनवाँ लढ़ी माँ बैठ के।।
जाड़ों का मौसम जाड़ो लगत है, जाड़े ते बैला धीमे चलत है।
कैसो-2 माँ पहुँचो निज खेत।।1।। किसनवॉं........
छै बिसवा ज्यातें खां अबहीं परी, एखे मारे किसनवाँ ने जल्दी करी।
धीरे-2 जोतो दुइ खेत।।2।। किसनवॉं........
थक गौ किसनवाँ तो कल ना परी, छोर बैलन का उन्ने दओ दुई घरी।
तोर बंबुर का दतवन एक मोट।।3।। किसनवॉं........
बंबा में दतवन का लै के गयो, जाके किसनवाँ ने कुल्लो कियो।
कर कुल्ला फिर आयो निज खेत।।4।। किसनवॉं........
बरगद कै छाही माँ कुछ देर बैठो, आई किसानिन किसनवॉं के पांजर।
लैके हाथेमाँ रोटी भो साग।।5।। किसनवॉं........
रोटी थी जुंडी की भाजी चना की, जोतन लगो हर किसनवाँ दुबारा।
खोके रोटी औ जल पी के ठंड।।6।। किसनवॉं........

।। वर्षा वर्णन ।।

आज घटा छायी घनघोर रे, बरसे बदरिया जोर रे।। टेक।।
चम-चम गगन में चमके विजुरिया, छायी चहुँ दिसि कारी अँधरिया।
हवा करें अति शोर रे।।1।। बरसे.....
सावन दिल में आग लगावे, मोहि पिया की याद सतावे।
नाचे विवश मन मोर रे।।2।। बरसे.....
मेरे मनोरथ रह जायें छूछे, दिल की पिया बिन कोई न पूछे।
घूमें जगत बिच चोर रे।।3।। बरसे......
ऐ रे पवन सुन बिनती हमारी, ध्यान जरा दे तड़पे विचारी।

जा तू पिया जिस और रे।।4।। बरसे......
आ जा पिया अब पंख लगाके, बैठी अभागिन आस लगाके।
तू है मेरा चित-चोर रे।।5।। बरसे.......

।। दिलवाली।।

आँखों में आंधियाली है, चेहरे पे खुशियाली है।
चाल से मतवाली है, कुछ भी है दिलवाली है।।1।।
जुल्फें हैं कि घनाली है, ख्वाबों में हरियाली है।
होली है कि दिवाली है, कुछ भी है दिलवाली है।।2।।
मौसम में अंगड़ाई है, गुल इसने ही खिलाई है।
कोयल की रखवाली है।। कुछ भी है दिलवाली है।।3।।
प्राणों में बस जाये ये, दिल को भी बहलाये ये।
यह कामना निराली है। कुछ भी है दिलवाली है।।4।।

।। जीवन-सार-प्रेम।।

प्रेम नहीं जिस जीवन में है, वह जीवन तो ऊसर है।
कभी न दिल के कल्पित सपने, ऊष्मा से पाते हैं पनपने।
ऐसी दुनियॉ जिसने पाई, बह बिल्कुल ही मूसर है।।
बाह्याडम्बर को लिपटाये, सूखे शास्त्रों को चिपकाये।
कृत्रिमता ही दिखलाता जो, वह बिल्कुल धमधूसर है।।
तुम्हारे प्रेम को दिल में छिपाये जी रहा हूँ मैं,
कभी होगा मिलन, आशा सॅंजोये जी रहा हूँ मैं।
तुम्हारी मुस्कुराहट जब कभी भी याद आती है,
तभी मैं सोचता हूँ बस, इसी से जा रहा हूँ मैं।।

।। कमल की चाह।।

ऊषा की रक्तिम किरणों से, अचानक कंज हुआ अनुरक्त।
हृदय से सोच लिया उसने, इसी में बस मैं हूँ आसक्त।।
मगर अब ऊषा की मरजी, कि चाहे उसको या परको।
कमल तो कर पायेगा पुल्ल, उषा के ही कर से मन को।।
सोच कर ऐसा अब ऊषा, न बिसरा दे अपना कर्तव्य।
यही बस चाह कमल की है, युगल का सह जीवन हो भव्य।।

।। श्रीशवन्दनम्।।

दुग्धोदन्वतिशायिनं मुररिपुं, सद्भिः स्तुतांघ्रयाम्बुजम्।
अन्तर्ध्वान्तविनाशवासरपतिं, निक्षेपनिष्ठात्मनाम्।।
दत्वा भक्तिरसामृतं करुणया, संसारसंशोषणम्।
कुर्वन् भक्तियुतेषु साम्यसृजनं श्रीशं प्रपद्येऽनिशम् ।।
रसधर्मिणे नमः – यो रसं रसयुक्तस्य जगतः परिकर्षति।
स्वपदे रसदे राति स रसो सरसोऽस्तु मे।।

॥ पं. रामकिंकर उपाध्याय को भेंट ॥

श्री रामचरित पर विविध ग्रन्थ हैं, आदिकाल से संविलसित।
पर रामचरित मानस सा पाकर महद्ग्रन्थ हैं बुधरंजित।।
अरथ अमित आखर थोरे की, सुभग पंक्ति को कर चरितार्थ।
यह मानस जनमानस के आमय को करता दूर यथार्थ।।
इसके किन्तु तलस्पर्शी, व्याख्याता का गौरवमय पद।
बस एक आपके द्वारा ही, शोभित है पर अति ही निर्मद।।
इस गुरुतर कर्तव्य भार के, सम्मुख मैं नत होता हूँ।
और आपके चरणों में, श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।।

भाग–2

।। अन्योक्ति विलास का एक सरोन्योक्ति ।।

आपेदिरेऽम्बरपथं परितः पतंगा। भृंगा रसाल मुकुलानि समाश्रयन्ति।
संकोचमंचति सरस्त्वयि दीनदीनो, मीनो तु हन्त कतमां गतिमभ्युपैतु।।
भावार्थ= सरोवर! जब तुम सूखोगे, गगन में खग उड़ जायेंगे।
आम्र मंजरियों में आश्रय, भ्रमर जा करके पायेंगे।।
न है गति जिनकी अन्य परन्तु, मछलियाँ वे क्या कर लेंगी।
अन्त में अपने प्राणों को, तुम्हें ही अर्पित कर देंगी।।

।। जगत की स्वार्थान्धता।।

मधुप सरोवर में आया।।
बैठ कमल की पंखुड़ियों पर, छवि कोमलता से खुश होकर।
उसे मनोहर गीत सुनाकर, फैलाई अपनी माया।। मधुप....
सरल हृदय के सरसीरुह ने, कहा दिया सब तुमको हमने।
मेरा तन मन धन तेरा है, अलि ने मनवांछित पाया।। मधुप....
जब न रहा मकरंद जलज का, अलि ने साथ तजा नीरज का।
यही नियम है इस जग का भी, मैंने शोधन कर पाया।। मधुप....

।। उषा सुन्दरी।।

अनुरागवती उषा आई।।
विहगों का कलरव नूपुर है, गैरिक अंबर अति सुंदर है।
मारुत के मृदु मंथर गति में, देता सुंदर गीत सुनाई।। अनुरागवती.....
स्वागत में सब सुमन खिले हैं, पावन परिमल पवन मिले हैं।
देखो परम प्रफुल्लित होकर, भ्रमरों ने भी बीन बजाई।। अनुरागवती.....
प्यारी सखि को आई लखकर, प्रकृति नटी ने मन में खिल कर।
खेतों की हरियाली के मिस, पलकें स्वागत हेतु बिछाई।। अनुरागवती.....

तुम भी उठकर स्वागत कर लो, दूर व्यथा निज मन की कर लो।
अवलोकन कर अनुपम सुषमा, संसृति में चेतनता छाई।। अनुरागवती.....

।। प्रेमांजलि।।

।। दोहे।।

उभय हृदय के मिलन में, होता अन्तर हेतु।
खिलता द्रवता उदय पर, सुम मणि शशि ग्रह केतु।। 1 ।।
प्रेम जगत का सार है, प्रेम जगत आधार।
हरि भी होते प्रेम से निराकार साकार ।। 2 ।।
उभय हृदय अतिशय मिलन, को कहते हैं स्नेह।
प्रेम न वह है जो करे सदा अपेक्षा देह।। 3 ।।
युग प्रेमी उर निकटता, की सीमा अज्ञेय।
प्रेम सुधा निर्माण का, है उर को ही श्रेय।। 4 ।।
कपट रहित हो उर सदा, गर्व न हो अवशेष।
प्रेम यही बस चाहता, अर्पण करो अशेष।। 5 ।।
स्नेह चन्द्र उगता सदा, सहृदय नर उर रात।
इसे शब्द से बाँधना, बहुत असम्भव बात।। 6 ।।
मेहंदी छद में जिस तरह, रहे लालिमा व्याप्त।
स्नेह भाव भी जगत में, उसी तरह है व्याप्त।। 7 ।।
फल का रस बस सार है, किन्तु न है वह दृश्य।
स्नेह जगत का सार है, होते हुए अदृश्य।। 8 ।।
नदियाँ जातीं उदधि में, मिल जातीं सस्नेह।
देती शिक्षा प्रकृति भी, करो सभी से स्नेह।। 9 ।।
दो अक्षर के शब्द से, बंधा हुआ संसार।
जैसे तरु के मूल से, सधा विटप विस्तार।। 10 ।।

प्रेम शब्द अति गूढ़ है, यह है अव्याख्येय।
विषय लिप्त मस्तिष्क युत नर द्वारा अज्ञेय।। 11।।
गंगा की धारा अमल, सदृश विमल है प्रेम।
सही अर्थ को समझ लो, तो हो सकता क्षेम।। 12।।
भाव वासना रहित हो, एवं परम पवित्र।
तब बनता है हृदय में, सही प्रेम का चित्र।। 13।।
सभी मनुज से प्रेम की, माँग करो मत भूल।
अन्त समय बनता वही, क्योंकि हृदय का सूल।। 14।।
जिस दिन जग हो जायगा, प्रेमाम्बर से हीन।
उस दिन यह हो जायगा, बिना सलिल के मीन।। 15।।
धारा-कर से घन, धरा से मिलता सविशेष।
पुलक प्रकट भी घास मिस, करती धरा विशेष।। 16।।
सत्यप्रीति की विरह में, ही होती अनुभूति।
विरह प्रेम का निकष है, अधिक स्नेह प्रसूति।। 17।।
कमल फूल में ही भ्रमर, बंधता सायंकाल।
यद्यपि सब सुम में स्वरति, का फैलाता जाल।। 18।।
प्रेमोद्‌देश्य न तुच्छ हो, सदा रहे आदर्श।
तब होता है हृदय में, उद्‌गम नर के हर्ष।। 19।।
हरि से या ईमान से, कर सकता क्या प्रेम।
जन्म मनुज का लेन जो करता नर से प्रेम।। 20।।
यह जग हरि का देह है, सकल जीव हरि अंग।
हरि में चाहो प्रीति यदि, करो सभी से संग।। 21।।
जो सबको देता सदा, प्रेम बराबर मान।
जग रत्नाकर रत्न वह, देह उसी को जान।। 22।।

चक्रवाक शशि को सदा, अवलोकता अमन्द।
पर न ध्यान देता कभी, शशि है अति ही मन्द।। 23।।
निजोत्सर्ग करता शलभ, दीपक पर सह हर्ष।
जलता निष्ठुर दीप पर, बढ़ा अधिक उत्कर्ष।। 24।।
पूर्ण चन्द्र छवि देखकर, होता उदधि प्रसन्न।
मिलन हेतु वह उछलता, हो जाता अवसन्न।। 25।।
लता विटप का स्नेह ही, है वास्तव में स्नेह।
गिरता तरु जब भूमि पर, गिरती लता सदेह।। 26।।
पंक मग्न गज को कभी, हथिनी तजती है न।
प्रेमी दुख लख कर दुखी, प्रेमी नहिं जो हो न।। 27।।
स्नेह न मरता है कभी, वह न देह की वस्तु।
वह तो अक्षर अनवरत, आत्मा की है वस्तु।। 28।।
अलग अलग जल बिन्दु युग, होते तब हैं खिन्न।
मिलते तब अति प्रेम से, होते और अभिन्न।। 29।।
पर्व शर्वरी में न शशि, जाये निशि को छोड़।
ऐसा ही हो प्रेम जग, युग को सके न मोड़।। 30।।
किसी शक्ति अज्ञात को, रहा विश्व यह खोज।
होता श्रमित भ्रमित वह, दिन से निशि तक रोज।। 31।।
झरना झर झर शब्द कर, झरती करती शोर।
किसके सम्मुख जा रही, है एवं किस ओर।। 32।।
देख जगत कमनीयता, सफल करो निज नेत्र।
द्रोह त्याग सबसे बना, उर को प्रेम क्षेत्र।। 33।।
मृदुभाषण से जगत में, बहती अमृत धार।
हटती उर से शत्रुता, होता सबसे प्यार।। 34।।

शशि के धवल प्रकाश से, खिलता कुमुद समूह।
प्रेमी हृदय प्रभाव से, खिलता मनुज समूह।। 35।।
प्रेम छोड़ता मनुज पर, निज अव्यक्त प्रभाव।
कभी-कभी पर हृदय में, करता गहरा घाव।। 36।।
उभय प्रेमी नम्रता, की करता है चाह।
प्रेम तभी बनती हृदय, में सुप्रेम की राह।। 37।।
प्रेमी को रहती सदा, निज प्रेमी की चाह।
बिछुड़ गये तो युगल के, उर में होता दाह।। 38।।
सच्चा प्रेमी है न जग, की करता परवाह।
तजता प्रेमी को न वह, में भी नदी प्रवाह।। 39।।
समझ बूझकर ही सदा, करो प्रेम लो मान।
सब न सरल तव सहश ही, होते हैं यह जान।। 40।।
प्रेम अश्म को भी बना, देता है भगवान।
परुष हृदय को भी त्वरित, करता मोम समान।। 41।।
कोई किसी मनुष्य का, है न जगत में सोच।
बनते निज बस प्रेम से, ला निज मन में लोच।। 42।।
हर हर नदी प्रवाह में, सुन पड़ता नवराग।
स्नेहकाल में, विरह में, होता किन्तु विराग।। 43।।
उदयाचल पर उदित नित, होते सूर्य विदेह।
तथा स्वकर से बनज बन, सहलाते सस्नेह।। 44।।
सही प्रीति में वासना का होता न स्थान।
इसकी करना कल्पना, है न बहुत आसान।। 45।।
प्रेमी हित सहता सदा, प्रेमी कष्ट अनेक।
किन्तु न है वह त्यागता, निज स्नेह का टेक।। 46।।

प्रेमी हित में मानता, प्रेमी अपना स्वार्थ।
करता है न प्रयत्न वह, कभी हेतु निज स्वार्थ।। 47।।
सही प्रेम कह स्वार्थ हित, करता जो नर प्रेम।
उस नर धोखेबाज का, होता है नहिं क्षेम।। 48।।
जब होता है युगल में, सकल समर्पण भाव।
तब चलती उर जलधि में, सही प्रेम की नाव।। 49।।
करता है यदि एक नर, पर नर से अति प्रीति।
कुछ न झुके पर मान्य तो, वह पागलपन रीति।। 50।।
जगत जलज की बाह्य छवि, है सांसारिक भूति।
पर परिमल है सकल नर, की आपस की प्रीति।। 51।।
नदियाँ इच्छा रहित भी, मिलतीं जा जलनाथ।
पर नर से खिंच मनुज बस, विधिबस करता साथ।। 52।।
प्रेम मूल विरहित न जग, विटप टिके क्षण एक।
भूति सुसिंचन आदि हो, भले उपाय अनेक।। 53।।
परुष हृदय के मनुज कुछ, होते हैं संसार।
उनको रस इस प्रेम का, लगे नितान्त असार।। 54।।
प्रणय हृदय का विषय है, एवं अनुभव गम्य।
अर्थसाम्य है ब्रम्ह से, अतः बहुत है रम्य।। 55।।
सूक्ष्म अर्थ इस प्रेम का, सके न कोई जान।
स्थूल अर्थ इस हेतु सब, लेते बरबस मान।। 56।।
भक्ति स्वार्थ आसक्तिरति, आदि प्रेम के भेद।
धारा लहर तरंग सब, जैसे जल के भेद।। 57।।
स्नेह रहित शुभ वस्तु भी, लगती गरल समान।
अशुभ वस्तु भी स्नेह युत, लगती अमिय समान।। 58।।

प्रेम सहश गुरुभाव युत, भाव न है संसार।
स्नेह रूप है ब्रम्ह भी, स्नेह जगत का सार।। 59।।
स्वार्थ रहित होना प्रणय, बहुत बड़ी है बात।
अतः स्वार्थ का प्रेम पर, करते नर आधात।। 60।।
तू रह जाता प्रेम में, मैं भग जाता दूर।
घायल होता शीघ्र ही, प्रेम शस्त्र से शूर।। 61।।
चातक घन का स्वाति जल, पीता अन्य न नीर।
अन्य समय बादल भले, बरसावे शुभ क्षीर।। 62।।
मिलनात्यन्तिक ही सही, है बस प्रणयाधार।
मिलनोत्कण्ठा किन्तु है, पहला मुख्य विचार।। 63।।

।। एक सुबह।।

था उषाकाल प्राची मुख में, थी बिखर रही परिमल गुलाल।
जिससे लज्जा लोहित सा, हो गया वदन था लाल लाल।। 1।।
रजनी की कबरी की स्याही, अब फीकी थी शीतल थी।
जो निज यौवन में कामोल्वण, थी मंजुल थी अलिकुल सी।। 2।।
विहगों का दल चल दल सा, चल पड़ा गगन मण्डल में।
खिल उठे मृदुल मंजुल उत्पल, पल्वल के शीतल जल में।। 3।।
सिहरती मचलती हवा चली, किसलय समुदय को हिला चली।
दिनकर ने कर से छुआ जभी, खिल उठी कुसुम की कली-कली।। 4।।
था नलिन सरोवर पुलिन मध्य, सुम वलित बकुल नयनाभिराम।
जिसकी छाया में पथिकवृन्द, पाता था आतप से विराम।। 5।।
थी वहीं एक बैठी रमणी, सुम युता लता रति प्रतिकृति सी।
वेदना विमर्दित हृदय कुसुम, की करती थी अनुकृति सी।। 6।।
थे अस्त व्यस्त कुन्तल कलाप, करती थी अन्तर से विलाप।

तरु से छनती थी अरुण रश्मि, पड़ती थी मुख पर वक्र चाप।।7।।
आ गया वहीं पर युवक एक, बस उसी समय अनुराग मूर्ति।
मिल गये उभय रति और काम, जड़ में भी उपजी मधुर स्फूर्ति।।8।।
था युगल हृदय में विपुल स्नेह, कर रही प्रकट थी पुलक देह।
ऊपर से आतप था लेकिन, छाया था मन में प्रेग मेह।।9।।

।। किसी आश्रयभूत व्यक्ति के मिलने पर।।

जीवन तरी मेरी भवाम्बुधि मध्य में पथ भ्रान्त थी,
एवं कुशल धीवर बिना कल्लोल बीच अशान्त थी।
अब आप जैसा अति निपुण मल्लाह उसको मिल गया,
उसका हृदय-राजीव हर्षोत्फुल्ल सहसा हो गया।।

।। चिन्तन।।

तुमको यह मानव जन्म मिला, किस हेतु विचार करो इसका।
जग की ममता कर दूर सदा हरि नाम का प्याला पियो रस का।।
कलिकाल कराल का ब्याल यहाँ, सबको अपने मुख में करता।
इससे बस जीव वही बचता, समता कर जो हरि को भजता।।
यह मानव का मन मन्दिर है, इसको तुम स्वच्छ सदा रखना।
हरि का घर है यह सोच इसे, सुविचार-सजावट ही करना।।
मत द्रोह किसी जन से करना, पर दुःख बने तुमसे हरना।
तरना भव सागर से गर है, हरिनाम सदा मन से भजना।।

।। बिरही की कहानी उसकी जुबानी।।

दुनियाँ की आँखों से बचकर, सिसक-सिसक कर रो लेता हूँ।
रातों के पिछले पहरों में, देख तुम्हें खुश हो लेता हूँ।।

।। योगी का परिवार।।

धीरज पिता, क्षमा है जननी, शांति चिर प्रिया गृहणी है।
सत्यमित्र भाई मन संयम, दया स्नेहमय भगिनी है।।
भूतल शय्या वस्त्र दिशायें, ज्ञानस्वरूप अमृत भोजन।
उस योगी को किसका डर है, जिसके ये सम्बन्धी जन ।।

गद्यानुवाद - जिसका पिता धैर्य, माता क्षमा, और शांति चिर प्रिया गृहणी है, जिसका मित्र सत्य, बहिन दया और भाई मन पर संयम है। पृथ्वीतल जिसकी शय्या, दिशायें वस्त्र और ज्ञान रूपी अमृत भोजन है, हे मित्र! बताओ जिसके ये कुटुम्बी हैं, उस योगी को किससे डर है।

।। प्रकृति सौन्दर्य।।

मधु मकरन्द मदालस सारसराजि अरुण चुम्बित है।
वसुधा प्राची ककुभ लालिमा, देख हृदय में पुलकित है।।1।।
मलयानिल मधु भार नमित, मन्थर गति से चलता है।
इधर कोक दम्पति का मन, धीरे-धीरे खिलता है।।2।।
इस सुखदायक परिमण्डल में, तेरा दिल क्यों रोता है।
अपने उल्वण अश्रु सलिल से, निज कपोल धोता है।।3।।

।। नदी ।।

हो रहा प्रवाहित जल जीवन, अनवरत प्रफुल्लित एकाकी।
निरपेक्ष चाल सीधी बाँकी, सिंचित करता वसुधा-रज-कन।।1।। हो रहा......
कह रहा कौन इसको रोदन है, यहाँ कहाँ पर आँसू कन।
देखो न सचेतन है तन-मन।।2।। हो रहा......
यह नदी सीख यह देती है, तुम बढ़ो अकेले कहती है।
पर सुनो लगाकर युगल-श्रवन।।3।। हो रहा......

।। प्रेमोपालम्भ ।।

ले आये कहाँ अरे तुम इस पंकिलता युत थल में।
इस जीवन के चिद्शाश्वत! क्या अनल रुकेगा जल में।।
क्या तुम्हें मजा आता है आश्रित को दुख देने में।
एवं बिगाड़कर उसका संसार लूट लेने में।।
इस विकल हृदय से मेरे कुछ अन्तर्ध्वनि है आती।
अस्फुट सी युगल श्रवण में कुछ गुप्त बात कह जाती।।
रह रह कर मेरी पीड़ा नचती है मेरे मन में।
चपला ज्यों नृत्य करे बस कादम्बिनि मध्य गगन में।।
ले कुसुम सुरस मधुकरियाँ बस अपना काम बनातीं।
पुष्पों को क्या दुख होगा इसको न ध्यान में लातीं।।
बस उसी तरह क्या तुम भी आनन्द गये ले मन से।
बिन तारों के सीयेगी क्या गुदड़ी निशि बेमन से।।
हे विरह मिलन के सर्जक बोलो तुम प्रेम कहाँ हो।
चकवी में शशि में हो या हर जनमन के तन में हो।।

।। अभिनव वर्ष ।।

यह नवल वर्ष का नव प्रभात।।
चल रहा पवन धीरे-धीरे, हिम-जल युत यवस नदी तीरे।
ये उडु हैं जो थे विगत रात, यह नवल वर्ष का नव प्रभात।। 1।।
हिल रहे सरित् में नलिन मुकुल, खिल रहे पुलिन पर विटप बकुल।
आ रहे क्यों कि हैं दिवस तात, यह नवल वर्ष का नव प्रभात।। 2।।
मिल रहे गले अब किरन सुमन, कर रहे सफल अपना जीवन।
चल रहा मनोरम मलय वात। यह नवल वर्ष का नव प्रभात।। 3।।

।। कर्तव्य त्याग निन्दा ।।

कर्तव्यपथ को त्याग करके भटकना ही पाप है।
मानवों को इसलिए बस जलाता त्रयताप है।।
जो छोड़ निज कर्तव्य मानव व्यर्थ जग में घूमते।
वे व्यक्ति शाक्तिविहीन होकर विफलता पद चूमते।।

।। भारतमाता के सपूतों को शुभ संदेश ।।

भारत माँ के वीर अंगजों निज पथ स्वयं प्रशस्त करो।
अपनी भुजा शक्ति से सत्वर अरि समाज को त्रस्त करो।।
प्रतिदिन प्रातः सूर्य उदित हो देता यह सन्देश सुनो।
निज कर्तव्य कभी मत भूलो कष्ट देख मस्तक न धुनो।। 1 ।।
एक सुनिश्चित लक्ष्य बनालो उस पर ही बढ़ते जाओ।
सत्पुरुषों के सुन्दर पथ को सत्वर ही तुम अपनाओ।।
अपना लक्ष्य कभी मत भूलो स्वल्प लाभ में पद न घरो।
सम्मान बड़ों का एवं अपने से छोटों को प्यार करो।। 2 ।।
मत निराश हो कभी, सभी का विधि बनता उद्यम से।
अतः कभी मुख को न चुराओ कतराओ मत श्रम से।।
'चरैवेति' इस शास्त्र वचन को हृदयंगम तुम कर लो।
उन्नति अपना स्वयं करो यह बात हमारी सुन लो।। 3 ।।
लक्ष्य लता तो गुरु सम्मान सलिल से ही विकसेगी।
तभी तुम्हें अप्रत्याशित आनन्द प्राप्ति भी होगी।।
गुरुओं का सम्मान करो जो जड़ है उन्नति तरु का।
इसके अभाव के कारण ही बस कष्ट न मिटता उर का।। 4 ।।

।। उद्बोधन।।

क्यों निराश होता रे मानव, तू तो अंश उसी का है।
जो चिद्घन है अविनाशी है, जग में शासन जिसका है।।
यदि सांसारिक बाधायें, तेरे पथ की अवरोधक हैं।
तो हरि के शुभ्र चरित्र तुम्हारे, मतिशोधक हैं मनबोधक हैं।।
तू अपने से निम्न जनों को ही, देखाकर सोचाकर।
उनकी दिशा दशा बतला दे, उनका दुख जायेगा हर।।
यही मार्ग है दुःखोदधि से, तरने का सुख पाने का।
तथा नाम करने का जग में, जीवन सफल बनाने को।।

।। क्षणभंगुरता।।

जिसका मिलन हुआ है, बिछुड़न भी हुआ उसी का।
जिसका उत्थान हुआ है निपतन भी हुआ उसी का।
जो कुमुद खिले थे सर में वे ही बस मुरझाये।
जो मुकुलित हुए कुमुद थे ज्योत्स्ना ने उसे खिलाये।।

।। प्रेम की भीख।।

वह भी एक समय था जब तुम, देख प्रेम से मिलते थे।
और देखकर हमको सम्मुख, मन ही मन अति खिलते थे।।
यह भी एक समय ही है जब, देख दूर तुम भगते हो।
और अपरिचित सा अपने को, आज प्रदर्शित करते हो।। 1।।
खैर नहीं है बात मुझे कुछ, देह तुम्हारी कहीं रहे।
पूर्व सदृश ही पर उर में, बस प्रेम तुम्हारे बना रहे।।
इसको तो तुम भिक्षा समझो, मेरी या निज दया कहो।
मन से छोड़ दिया यदि तुमने, तो क्या होगा तुम्हीं कहो।। 2।।

भीख प्रेम की माँग रहा बस, और नहीं कुछ लेना है।
दीन हीन मुझ सदृश मीन को, उर सर में रख लेना है।।
इतनी ही बस भिक्षा मुझको, कृपा पुरस्सर दे दो तुम।
और भूल सब मेरी त्रुटियाँ, मान अबुध अब जाओ तुम।।3।।
त्रुटियाँ तो इस जीवन में, स्वाभाविक ही हो जाती हैं।
किन्तु कभी छोटी सी त्रुटि भी, दुःख हेतु बन जाती है।।
क्या रोऊ मेरी रोदन की, कीमत कौन चुकायेगा।
मत रोओ कुछ बात नहीं, कह कौन मुझे समझायेगा।।4।।
बड़ी कृपा की हृदय-निकेतन, में मुझको भी वास दिया।
मुझ कलुषित ने किन्तु वहाँ भी, अपना कलुष प्रसार किया।।
अब किस मुख से कहूँ कि मुझको, निज मन से मत दूर करो।
मुझको तो अति दूर हटा, निज हृदय-भार कुछ न्यून करो।।5।।
मैं जी लूंगा किसी तरह, मन को अतीत में ले जाकर।
पर तुमको न कहूँगा मेरा, जीवन विकसाओ आकर।।
मेरा जीवन उपवन तो बस, स्मृति-जल से सिंचित होगा।
इसको विकसित करने का, शुभ श्रेय भला किसको होगा।।6।।

।। परिणय स्वागत पद्यावली।।

हम स्नेह सिंचित वल्लरी, मंगल विटप को दे रहे।
यह रत्न कन्या रूप केवल, लो समर्पित कर रहे।।
शुभ आगमन से आपके, यह धाम पावन हो गया।
रवि रश्मि से सहसा प्रफुल्लित कंज सा मन हो गया।।
तारे खिले आकाश में, इस भाँति शोभित हो रहे।
नभदेव मानो हो मुदित रोमान्च पूरित हो रहे।।
मैं आपका सत्कार क्या, विधि के सहित कर पाऊंगा।

मैं आपके सम्मुख सदा बस, तुच्छ पद ही पाऊँगा।।
दे न सकते आपको कुछ हम विनय यह कर रहे।।
यह रत्न कन्या रूप केवल, लो समर्पित कर रहे।।
मेरे हृदय के नील नभ का, यह सुशोभित चन्द्र था।
मैं जान पाया था न इस पर आपका अधिकार था।।
स्वीकारिये अपनी अमानत, दान तुमको कर रहे।।
आज बिछुड़ी निजजनों से, ये सभी हैं रो रहे।
यह रत्न कन्या रूप केवल, लो समर्पित कर रहे।।
आज इसके तात का, अधिकार तुम हो पा रहे।।
भूल इसकी दूर करना, हम निवेदन कर रहे।।
प्रेम सुधा को प्रेम पूर्वक, आप अब स्वीकारिये।
निज उर उदधि में सुरसरी सा, आप इसको धारिये।।
हम अकिंचन क्या कहें, बस संकुचित ही हो रहे।।
हम आपके सम्बन्ध से ही, अब बड़े अति हो गये।
इस गेह को अब मानियेगा, मूल्य बिन ही क्रय किये।।
हम आज अपने हृदय का ही, खंड अर्पित कर रहे।
यह रत्न कन्या रूप केवल, लो समर्पित कर रहे।।

।। वेधोपालम्भ।।

इन्दीवरेण नयनं मुखपंकजेन, कुन्देन दन्तमधरं नवपल्लवेन।
अंगानि चम्पकदलैः स विधेय वेधाः, कान्ते कथं घटितवानुपलेन चेतः।।
पद्यानुवाद- दृग नील पंकज सा तथा मुख लाल नीरज सा।
हैं कुन्द से ये दन्त एवं ओष्ठ किसलय सा।।
चम्पादलों से फिर बनाया शेष अंगों को।
विधि ने उपल से क्यों बनाया पर हृदयतल को।।

।। अनन्यता।।

सूर्य चला जायेगा तो दिन कहाँ रह जायेगा।
तुम चले जाओगे तो मैं कहाँ रह पाऊँगा।।
चॉंद चला जायेगा तो रात भले रह जायेगी।
मैं चला जाऊँगा तो तुम भले रह जाओगे।।

।। केश विन्यास पर कल्पना।।

स्तनाभोगे पतन् भाति कपोलात्कुटिलोऽलकः, सुधांशु बिम्बतो मेरौ लम्बमान इवोरगः।।
हिन्दी पद्य- कुटिल केश गण्डस्थल से, कुच पर गिरता शोभित है।
मानों चन्द्रबिम्ब से लम्बे, ब्याल मेरु पर लम्बित हैं।।

।। प्रकृति में प्रेम दर्शन।।

कोमल स्वर्णिम किरणें, कमलों को सस्पृह छूती हैं।
जिससे उनका मन खिल जाता, मुख भी खिल जाता है।।1।।
यह सस्नेह मिलन पुलकन, मुस्कान सरल अद्‍भुत है।
देख चक्र दम्पति का मन, आपस में मिल जाता है।।2।।

।। प्रकृति प्रेम।।

पर्व शर्वरी का उदय, देख पयोधि प्रसन्न।
पर शशि घन में जा छिपा, उदधि हुआ अवसन्न।।

।। नूतन संवत्सर अभिनन्दन।।

मधुप मन्जु माकन्द मन्जरी में गुंजन करते हैं।
पिक निज कल काकली सुभग से सहृदय मन हरते हैं।।
चक दम्पति मालती लता में प्रेम जाल फैलाते हैं।
मधुर मधुर मन्थर स्वर में कुछ सरस गीत गाते हैं।।
इनमें कितना सहज स्नेह है नूतन संवत्सर में।
यही प्रेम क्या हो पायेगा इस भौतिक नर उर में।।
आपस का व्यवहार हमारा निर्मल हो निश्च्छल हो।
श्यामल स्नेह सलिल पूरित मन बने न ईर्ष्या मल हो।।
द्वेष भाव का करें निवारण इस नूतन संवत्सर में।
प्रखर मनीषा सरल स्नेह का संगम हो सब उर में।।
जीवन हम सबका विकसित हो जैसे सुर उपवन नन्दन।
नवल वर्ष में नमित हृदय का स्वीकृत हो अभिनन्दन।।।।

।। वियोग : शाश्वत सत्य।।

तुम्हें हुआ हो अगर किसी का वियोग दुख तो न शोक करना।
नृशंस जग से कभी न रोना, मसोस मन को विषाद सहना।।
अरे प्रकृति को निहार लो तुम, तथा हृदय में विचार लो तुम।
वियोग ही एक सत्य शाश्वत, सुनो लगा ध्यान मूक कहना।।

।। परिणय स्वागत पद्यावली।। हरिगीतिका छन्द

क्या रम्य वेला है चराचर चाँदनी से व्याप्त है।
हो क्यों न सुन्दर आपका सहयोग भी जब प्राप्त है।।
परतृप्ति में ही तृप्त दिखते आज के दिन में सभी।
यह मांगलिक दिन आज का भूला न जा सकता कभी।।
सम्भार भी सब वस्तुओं का मन सभी का मोहता।
मण्डपतले मणिदीप सा विद्युत् नियंत्रण सोहता।।
सुरभित सुखप्रद मन्द मारुत क्लांति सबका हर रहा।
व्यंजन सुरभि दे दर्शकों में लोभ सर्जन कर रहा।।
पीयूष के समतुल्य ही पक्वान्न भी रुचिकर बने।
स्वादिष्ट द्विगुणित हो गये हैं स्नेह रस से ये सने।।
वैभव तथा सौशील्य का ही सम्मिलन यह हो गया।
स्वर्गीय सुषमा का धरा पर अवतरण क्या हो गया।।
बस आपके सम्बन्ध से मैं आज बड़भागी बना।
पारस्परिक सहयोग का ही यह सुदृढ़ माध्यम बना।।
अब आज से हम आप दोनों एक मन दो तन हुए।
एवं उभय के दुःख सुख में हम युगल भागी हुए।।
मैं हो गया अभिभूत स्वागत लाभ कर के आपका।
है सत्क्रिया में क्योंकि हार्दिक प्रेम मिश्रण आपका।।
बस कामना है स्नेह निर्मल यह चिरस्थायी रहे।
हर कर्म से सद्भावना का सम्मिलन होता रहे।।

।। एक मिलन।।

वह निशा माधवी मधुवर्षी, माकन्द मालिका से शोभित।
थी निभृत त्रिपथगा की वेला था गगन निशाकर से विलसित।।
वह मसृण मृदुल उत्पल दल की थी कोमल और हरित शय्या।
थे युगल मनुज उसमें सोये मन में पावन सौहार्द भरित।। 1 ।।
मकरन्द भार से दब-दबकर पवनमान प्रवाहित था मन्थर।
हो गये उभय गत कथा कथन अनुमनन हेतु उद्यत सत्वर।।
हो प्रथम समुन्मुख बोल उठा तुम करो श्रवण मेरी पहले।
तदनन्तर तुम भी आत्मकथा कहना मध्यस्थ हृदय रहले।। 2 ।।
मानसीवृत्ति कोमल कलिका की तरह खिली कमनीयतमा।
थी उषा खिली प्राची नभ में वर्णनातीत उसकी सुषमा।।
ले लिया मान मन से उसको सहचरी हृदय से सुभगतमा।
कर्तव्य पाश में बंध सायं पर चली गई प्रसस्त प्रतिमा।। 3 ।।
हो गया पुनः जीवन मेरा गाढान्धकार रो संकलुषित।
कर रहा भ्रमण तब से देखो मन लेकर विरह ज्वाल प्रचित।।
पस्पशस्पर्श मैंने अपने जीवन का तुमको करवाया।
गत और हमारा वर्तमान कैसा है तुमको बतलाया।। 4 ।।

भाग–3

।। भगवद् वैभव ।।

त्रिलोकेश्वरायाव्ययाजयाय, भवाम्बोध्यगस्त्याय भक्तप्रियाय।
अजायारविन्दाम्बकायादभुताय, नमः शाश्वतायाच्युतायाक्षराय।।

(1)

कारुण्यसागर सद्गुणाकर परमनागर भूपते।
गोविन्द अज अरविन्द मुख सुखसिन्धु प्राणद गोपते।।
पापौघमुंजानल, विमल, मलधाम कलि दादुर अहे।
आनन्दघन मन भृंग तव पदकंज संतत रत रहे।।

(2)

राकेशशेखर मानसाम्बुज चंचरीक प्रजापते।
लोकेश दुःख अशेषनाशक असुर त्रासक श्रीपते।।
पाथोज दृग दशमौलिमृगमृगनाथ श्रीरघुनाथ हे।
संसारसागर बोहिताच्युत स्वजनसर जलनाथ ते।।

(3)

गोपाल जनमानस मराल उरस्थमाल विशाल है।
श्यामाम्बुधर निभ शुभकलेवर मलय चर्चित भाल है।।
सर्वांगभूषण सकल भूषित सहित पुष्प तमाल है।
ऐसे महीधर पदकमल में बार शत नत भाल है।।

(4)

धृत ऊर्ध्वपुण्ड्रललाट मृगपतिवाहनाचल धर सदा।
आनन्दप्रद अतिस्वच्छरद गद द्विरद पंचानन सदा।।
निज भक्त इन्दीवर दिवाकर सन्तगण पालक सदा।
इस तुच्छ जन का भी हृदय गाता रहे हरि हरि सदा।।

(5)

संसार पालक नंद बालक कंस घालक हे प्रभो।
प्रणतार्तिहर कल्याणकर भवसिन्धुबोहित हे विभो।।
निज दास रक्षक जननि सम मम नाथ होकर के मुदा।
इस तुच्छजन को स्वपद पंकज भृंग करलो धृतगदा।।

(6)

प्रभु प्रेरणा से ही मनुज कुछ कार्य करता है कभी।
जड़ जंगमादिक जीव प्रभु के क्योंकि आश्रित हैं सभी।।
हरि के अनुग्रह के बिना नर कर न सकता कुछ कभी।
कविश्रेष्ठ वन्दन पूर्व हरि का इसलिए करते सभी।।

(7)

जगदीश्वरेच्छा से उदित शुभ भाव कुछ मन में हुआ।
फिर उस अनादि अखण्ड प्रति कुछ कथन का साहस हुआ।।
आशा मुझे है यदि त्रिलोकेश्वर अनुग्रह साथ हो।
तो इस कुसुमनव माल से जनमन सुकण्ठ सनाथ हो।।

(8)

कलि में नरों की बुद्धि, ईश्वर प्रति कभी लगती नहीं।
संस्कार मनुजों के कभी हरि भक्त सम होते नहीं।।
तन और मानस मानवों के बहुत दुर्बल हो रहे।
इस हेतु उन्नति के शिखर पर चढ़ मनुज फिर गिर रहे।।

(9)

तत्वार्थ विज्ञ मनुष्य दुर्लभ हैं बहुत संसार में।
पाखण्ड पूर्ण अनेक मानव पर सुलभ संसार में।।
बस वाक्य रचना देखकर नर को न झुकना चाहिए।
तत्वार्थ विरहित बात को विष ही समझना चाहिए।।

(10)

यह विश्व ईश्वर शक्ति से है सत्य भासित हो रहा।
पर है नितान्त असत्य मुनि मन भी विमोहित हो रहा।।
कल्याण है नर का इसी में प्रेम हरिपद में करे।
फिर भव जलधि से धेनु पद सम शीघ्र ही वह निस्तरे।।

(11)

भवसिन्धु हित बोहित मनुजतन ईश ने तुमको दिया।
करके अनुग्रह हित तुम्हारे क्या न प्रभु ने है किया।।
फिर भी अगर तू छोड़ मत संगति महा अज्ञान की।
तो है कमी किसकी बता तेरी कि श्रीभगवान की।।

(12)

गीता पढ़ो श्रीकृष्ण ने क्या सव्यसाची से कहा।
जो विश्व में समता रखे वह भक्त मेरा है महा।।
पर काम क्रोध तजे बिना समता न आ सकती कभी।
जैसे बिना जल के तरणि स्थल में न चल सकती कभी।।

(13)

रे चपल मन आनन्दघन पदकंज का बन भृंग तू।
इस भाँति चढ़ अति शीघ्र पर हरिभक्ति गिरिवर श्रृंग तू।।
जो हैं त्रिलोकेश्वर महीपति कृष्ण जगपति भी तथा।
उन दाशरथि के चरित में निज को रमा दो तज व्यथा।।

(14)

जो शम्भु उर अम्भोज मधुकर हैं तथा कमलेश भी।
निज भक्त मानस हंस सज्जन चक्रवाक मृगांक भी।।
पद है सुशोभित वज्र अंकुश कंज ध्वज के चिन्ह से।
मन तू रमा निज को उसी पद में कमल में भृंग से।।

(15)

मैं कौन हूँ तुम कौन हो आये कहाँ से हैं तथा।
माता हमारी कौन है, है कौन मेरा गुरु तथा।।
इस बात को जो सारयुत है मनन कर तू सर्वदा।
मत व्यर्थ की तू बात मन में सोच रह होकर मुदा।।

(16)

दो चार दिन की आयु, साढ़े तीन कर की देह है।
फिर भी असीमित गर्व यह करता अनृत से स्नेह है।।
रे मूढ़ नर! कर गर्व मत यह देह है सब कुछ नहीं।
भज राम सब सुख धाम यह तन व्यर्थ में ही खो नहीं।।

(17)

जब केस कोई धाम में होता किसी के है कभी।
तब शीघ्र न्यायालय गमन करते सभय भव के सभी।।
इतना बड़ा यह विश्व फिर जाने न कितने जीव हैं।
इनका न न्यायी क्या कहीं, डरते न जो ये जीव हैं।।

(18)

सब जीव के अन्तर निरन्तर भुवनपति का वास है।
कलिकाल में पर जीव का मन पाप का अधिवास है।।
हरि नाम पावक में तपा मन स्वर्ण को कर शुद्ध ले।
नरमूढ़! फिर निज गूढ़ ईश्वर को सहज तू देख ले।।

(19)

जिसका हुआ है जन्म उसकी मृत्यु निश्चित है सही।
जिसकी हुई है मृत्यु उसका जन्म होना भी सही।।
यह मृत्यु क्या है समय सम से नष्ट होना देह का।
आत्मा सदा हरि सदृश अक्षर है क्षरण बस देह का।।

(20)

माया जगत्पति की बहुत ही प्रबल है यह सोच ले।
सुर नर असुर कोई नहीं जो फँसा भी निजको न ले।।
किस खेत की तू मूलिका है फिर सहज जो मुक्त है।
हरि की कृपा जब तक नहीं तू भव जलधि अनुरक्त है।।

(21)

माता पिता भ्राता सखा कोई न अपना है यहाँ।
भ्रम-जाल में फॅस जीव पर को मानता निज है यहॉ।।
आसक्ति इनमें छोड़कर जो जीव हरि का जाय हो।
आवागमन सरनाथ से वह पार सत्वर जाय हो।।

(22)

आसक्ति तज अनुरक्ति हरि पद में कहो किस भॉति हो।
संसार के सम्बन्ध से सत्वर कभी न विरक्ति हो।।
पर जान जाओगे जभी यह झूठ जग सम्बन्ध है।
फिर मान लोगे भक्ति बिन जीवन नितांत कबन्ध है।।

(23)

जिस भाँति मधु में मक्षिका कोई अचानक गिर पड़े।
मधु-स्वाद में फॅस युगल पर युत स्वयं भी यदि फॅस पड़े।।
उस भाँति ही यह जीव मायामय जगत में है पड़ा।
लगता सुखद जग किन्तु यह है जादुई फल तरु बड़ा।।

(24)

संसार, माया से जगत्पति की विनिर्मित है सही।
इस हेतु आकर्षक बहुत है सत्यता यद्यपि नहीं।।
मोहित न होकर विश्व से जो हरि भजन करता रहे।
उसके हृदय का शमल सब अतिशीघ्र ही जाता रहे।।

(25)

हरि नाम पहले श्रवण कर निज युगल कर्ण पवित्र कर।
फिर अमृत द्रव सदृश तोषक नाम प्रभु का स्मरण कर।।
इसके अनन्तर अन्तरात्मा में जनार्दन स्थापना।
कर भवाम्बुधि और तर कर इस तरह प्रभु अर्चना।।

(26)

परद्रोह, पर निन्दा, पिशुनता आदि ऊँचे पाप हैं।
आसक्त इनमें जो मनुज हैं वे बड़े ही पाप हैं।।
इस हेतु इनसे मानवों को सतत बचना चाहिए।
परदोष दर्शन में न दिन को व्यर्थ खोना चाहिए।।

(27)

किस हेतु आये हो यहाँ पर दृश्य यह सब और क्या।
क्या कर्म करना चाहिए है हो रहा निज कर्म क्या।।
इन सारगर्भित पंक्तियों का मनन मन से तुम करो।
एवं स्वमानस के शमल को शीघ्र ही अब तुम हरो।।

(28)

सम्बन्धियों में से किसी की देह उपरत जाय हो।
तो नेत्र से आँसू गिरा निज दुःख करते प्रकट हो।।
उस भाँति व्याकुलता अगर हो ईश दर्शन के लिए। तो कृष्ण को सब काम तज आना पड़े तेरे लिए।।

(29)

जिस भाँति जल में डूबता नर हृदय में निज सोचता।
प्रभु साँस थोड़ी जाय मिल तो दुःख मेरा छूटता।।
उस समय सम व्याकुल अगर तू ईश दर्शन के लिए।
तो विष्णु को पड़ जाय आना बस तुम्हारे ही लिए।।

(30)

जब तुम हृदय से ही न मानो ईश के अस्तित्व को।
एवं रहस्यात्मक न मानों विश्व के सुकृतित्व को।।
होगी न तो तेरे हृदय में ईश जिज्ञासा कभी।
एवं न जिज्ञासा बिना कुछ जान सकते हो कभी।।

(31)

आवागमन मोक्षार्थ श्रम इस जीव का उद्देश्य है।
पर हरि अनुग्रह के बिना यह बात अति दुर्ज्ञेय है।।
कलि से प्रभावित जीव निज उद्देश्य भूले जा रहे।
इस हेतु नाना दुःख मानव आज के हैं पा रहे।।

(32)

सम्पूर्ण दुःखों का समझ लो मूल संसृति मोह है।
उगता हृदय में मोह के आधिक्य से परद्रोह है।।
एवं समझ लो बात यह संसार हरि की देह है।
अब जान लो कितना जरूरी विश्व समता स्नेह है।।

(33)

विश्वेश अपने भक्त के हरते सकल संताप को।
वे देखते हैं जीव के हर पुण्य एवं पाप को।।
इस हेतु अपना कर्म होकर सावधान करो सदा।
जल में कमल सम विश्व से होकर अलिप्त रहो सदा।।

(34)

नर देह है सुख गेह हरि से स्नेह यदि तुम मत तजो।
भगवान को निज जान हितकारी सदा ही तुम भजो।।
जिसने दिया है जन्म तुमको क्यों उसे ही भूलते।
क्यों व्यर्थ में जग द्रोह करते गर्व में हो फूलते।।

(35)

दो सौंप हरि के हाँथ में निज जिन्दगी की डोर को।
मानो सदा तुम विश्वपालक के अनुग्रह कोर को।।
जो पाप पुण्य करो सभी को सौप दो प्रभु हाथ में।।
इस भाँति कर तुम शीघ्र सकते बात प्रभु के साथ में।।

(36)

कर प्रार्थना प्रभु से सदा उद्धार करने के लिए।
मत अर्चना कर ईश से जग कार्य साधन के लिए।।
जब कामना बस मोक्ष की उर में बची रह जायगी।
तब आप ही जग से तुम्हें अति ही घृणा हो जायेगी।।

(37)

जिस नाम को जप कर अमित पापी भवाम्बुधि से तरे।
एवं जिसे अतिश्रेष्ठ मुनियों ने स्वमन में हैं धरे।।
मुख से अचानक निर्गमन से पूत करता हृदय जो।
उस नाम को भज मन जिसे भजते सकल मुनि मुक्त जो।।

(38)

संसार के संचालनार्थ कृष्ण अज हरि हर बने।
क्रमशः त्रिगुण के धाम तीनों मूर्ति भी एवं बने।।
भव भव समय रज सत्व एवं विभव तम संहार में।
है बहुत आवश्यक अतः हैं केश शुभ संसार में।।

(39)

है सत्व गुण श्रेष्ठ त्रिगुण में मन्यु विरहित क्यों कि है।
है क्रोध कल्मष मूल एवं पाप निरयद्वार है।।
इस हेतु हे नर मूढ़ मानस निज बना घर सत्व का।
आभासा तू पा जायगा फिर परम पावन तत्व का।।

(40)

जब सत्व का अधिवास मन बन जायगा अभ्यास से।
तब सत्वयुत हरि में रमेगा हृदय कुछ आयास से।।
आवागमन से मोक्ष का पथ फिर नजर में आयगा।
यह जीव संसृतिसिन्धु भी इस भाँति फिर तर जायगा।।

(41)

जिसने हरित उपनेत्र को निज नेत्र में धारण किया।
उसको सकल जग भी हरित जैसे दिखाई ही दिया।।
उस भाँति ही मति-नेत्र हरि-उपनेत्र से कर युक्त ले।
फिर तू सकल संसार को अतिशीघ्र हरिमय देख ले।।

(42)

करुणाम्बुनिधि हरि हैं मनुज को सोचना यह चाहिए।
प्रभु भक्ति में नैराश्य अघ है मानना यह चाहिए।।
फल कामना को त्याग बस हरि भक्तिरत मन चाहिए।
यह भावना हो भक्त की प्रभु चरणरति तव चाहिए।।

(43)

मन को सुरेश्वर की कथा में ही भुलाना चाहिए।
भव विषय में सुख कल्पना नर को न करनी चाहिए।।
क्षीराब्धि वास दृश्य का मन मनन करना चाहिए।
जा नित्य मन्दिर इन्दिरापति नमन करना चाहिए।।

(44)

हरिगुण श्रवण अनुकथन में तन पुलक होना चाहिए।
संसार की हर वस्तु में हरि झलक पाना चाहिए।।
हरि मूर्ति दर्शन में न जन का पलक झुकना चाहिए।
भगवान जन उर में सतत हरि ललक होना चाहिए।।

(45)

संसार में यह जीव अपने कर्म से है आ पड़ा।
वह मोह बस संसार में अब मानता है सुख बड़ा।।
अज्ञानवश अस्तित्व हरि का वह न सत्वर मानता।
इस भाँति निज को वह सुखी संसार में ही मानता।।

(46)

संसार आवागमन ही बस मुख्य दुख का हेतु है।
भवसिन्धु से सन्तरण का हरिचरण रति ही सेतु है।।
इस बात को मन से मनन कर दुःख मोचन श्रम करो।
विश्वेश पद राजीव में प्रारम्भ रति का तुम करो।।

(47)

मानस विमल आदर्श सम सबसे प्रथम निज तुम करो।
कामादि मल मन से हटा निज हृदय पावनतम करो।।
फिर कल्पना हरि रूप की ध्यानस्थ हो करके करो।
होगा तुम्हें प्रभु रूप दर्शन मन निराशा मत करो।।

(48)

बस आर्त होकर सकृत प्रभु का स्मरण मन से तुम करो।
प्रभु सुन रहे हैं प्रार्थना विश्वास मन में तुम करो।।
हरि भक्ति में बस मुख्य साधन है विकलता ही सुनो।
इस हेतु होकर विकल भव के दुःख को मन में गुनो।।

(49)

संसार में है बाह्य आकर्षण परन्तु न सार है।
यह वृक्ष कदली के सदृश आमूल ही निःसार है।।
बस बाह्य छवि को देखकर नर को न झुकना चाहिए।
तत्वान्तरिक है या नहीं यह भी समझना चाहिए।।

(50)

जो कीट नित्य पुरीष में ही वास कर खाते तथा।
बस मक्षिका रव को समझते जो निरन्तर शुभ कथा।।
वे कल्पना क्या कर सकेंगे स्वर्ग अमृत की कभी।
उस भाँति हरि सान्निध्य सुख मन में न ला सकते सभी।।

(51)

हे हेतु विरहित कृत दया निज भक्त पर त्रिसिरारि हे।
हे मुझ अपावन अघ निवारन हेतु दत्त नरांग हे।।
आजन्म तव उपकार तरु मम उर धरा पर फलित हो।
करुणाम्बुनिधि तव पद जलज में मन भ्रमर मम भ्रमित हो।।

(52)

हे सकृत जनकृत निज अमित अघ क्षिप्र नाशक कृष्ण हे।
हे असुर पति परिवार कृत परिहार हारक दुरित हे।।
तोयज विलोचन जन विलोचन त्वरितप्रद शशिवदन हे।
मम उर प्रभावित तव गुणावलि से सतत होता रहे।।

(53)

निज नाम में भी निज प्रभावार्पण दिया कर आपने।
एवं न कोई किया निश्चित समय जप का आपने।।
इतनी दया होती हुई भी तव न मैंने जप किया।
धिक्कारने के योग्य मेरी है अनघ सकला क्रिया।।

(54)

भव जलधि बोहित मनुज तन प्रभु आपने मुझको दिया।
क्या क्या करूँ वर्णन न वर्णन हे हरे जाता किया।।
पर कुटिल मन मम तव चरण में आज तक न लगा अजे।
अब नाथ कर दो कृपा मानस गुण कुसुम तव से सजे।।

(55)

अवलम्ब सब अविलम्ब तजकर तव शरण जो आ गया।
वह रहित वो कालुष्य से प्रभु त्राण सत्वर पा गया।।
यह ज्ञात है पर मन न अब भी त्यागता भव मोह को।
भजता न पामर उस अखिल आनन्द के सन्दोह को।।

(56)

जब दुःख होता मन कथन तब नाम करता ईश का।
भव जाल फँसने हेतु वह करता नमन जगदीश का।।
नामग्रहण जो है कराता दुःख उसको मानता।
सुख मानता जग में न हित अनहित मनुज यह जानता।।

(57)

भगवान के सम्मुख सदा यह जीव अघ परिपूर्ण है।
पर ईश का भी मन स्वजन के प्रति दया से पूर्ण है।।
पर शर्त है इस बात की यह जीव हरि का जाय हो।
निज स्वार्थ को वह समझकर हरिभक्तिरत अब जाय हो।।

(58)

प्रभु नाम जप कर गीध गणिका आदि पापी तर गये।
कलिकाल के विकराल अति करवाल से जन बच गये।।
यह जानकर भी मूढ़ मन भवविषय विष सुख पी रहा।
मणि का पता पाकर सदृश लोभी बिना श्रम जी रहा।।

(59)

सद्रोह ही दशशीश ने नामग्रहण प्रभु का किया।
फिर भी उसे जगदीश ने निज धाम पावन दे दिया।।
फिर जो हृदय से नाम ले उसको मिलेगा क्या कहो।
इस बात को कर मनन पलभर भी न तुम खाली रहो।।

(60)

मैं हूँ अनघ अघ धाम सद्गुण धाम प्रभु हैं आप भी।
मैं पाप करने में न थकता अध शमन में आप भी।।
है लग गई अब होड़ हममें आपमें मत चूकना।
है देखना अब जीतता है कौन है अब देखना।।

(61)

प्रभु आपकी माया प्रबल से जीव मोहित हो गया।
आसक्त वह जग में हुआ सब ज्ञान उसका खो गया।।
अब काम अहि गरयुक्त हो वह शून्य चेतन हो रहा।
कटु निम्ब सम भव विषय का वह भोग सुखयुत कर रहा।।

(62)

कलि से प्रभावित मन प्रभो सत्कर्म में लगता नहीं।
दुष्कर्म दाहक वह्नि से हरि दूर यह भगता नहीं।।
दुर्वृत्त से यह चित्त दूषण हृत प्रदूषित हो गया।
पापाम्बुनिधि में मीन मानस मेश केशव हो गया।।

(63)

सकृत स्मरण निज पुत्र मिस पापीश ने प्रभु तव किया।
पर हेतु विरहित निज अनुग्रह से अमरपद दे दिया।।
इस बात को भी सुन हमारा मन मनन करता नहीं।
अघनाशिनी गंगा सदृश प्रभु नाम को भजता नहीं।।

(64)

कलिकाल में नाम स्मरण सम फलद मख तप है नहीं।
इस युग सदृश पातक भवन भी अन्य कोई युग नहीं।।
इतना सरल है पाप नाशोपाय पर प्रभु क्या कहूँ।
भजता न प्रभु तव नाम मैं फिर क्यों न भव दुख मैं सहूँ।।

(65)

हे दीनबन्धो! तव सदृश है कारुणिक कोई नहीं।
एवं न मेरे सदृश भी है शोच्यतम कोई नहीं।।
यह सोच कर मुझ परम पामर पर उचित जो हो करो।
या प्रेरणा दो भक्ति की निज या अनघ अघ मम हरो।।

(66)

जिनका न आकिंचन्य के अतिरिक्त कोई वित्त है।
उनके लिए श्रीकान्त का वात्सल्य शिशिरित चित्त है।।
उन शशि जनक मनवान प्रभु के ही सुपद प्राप्तव्य है।
यह चन्द्रमा मनसो सुजातः मंत्र से ज्ञातव्य है।।

(67)

भागीरथी मकरन्द सन्निभ चित्तकर्षित कर रहा।
परिमल तथा बस सचिदानन्द त्रिगुण ही बन रहा।।
उन सर्वदेवोपास्य सुन्दर कंज दृग श्रीकान्त के।
पादारविन्दों का नमन भवनाश हित मैं कर रहा।।

॥ इति ॥